IGKV/PUB/2024/T. BI/25

# छत्तीसगढ़ में सुगंधित पौधों की व्यावसायिक खेती

**संचालनालय अनुसंधान सेवायें**
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

प्रेरणास्रोत

**डॉ. गिरीश चंदेल**

माननीय कुलपति

इंदिरा गांधी कृशि वि वविद्यालय, रायपुर

मार्गद र्शन

**डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी**

संचालक अनुसंधान सेवायें, इं.गां.कृ.वि., रायपुर

सहयोगीगण

**डॉ. येमन कुमार देवांगन**

**डॉ. एलिस टिर्की**

**डॉ. पी.के. जोशी**

औषधीय संगंध पौध एवं अकाष्ठीय वनोपज उत्कृष्ठता केन्द्र एवं पादप कार्यिकी विभाग, इं.गां.कृ.वि., रायपुर

संपादन एवं मुद्रण :

**डॉ. एच.सी. नन्दा,** प्रभारी (तकनीकी प्रकोश्ठ)

**डॉ. आर.आर. सक्सेना,** सह संचालक अनुसंधान

**डॉ. पी.के. जोशी,** सह संचालक अनुसंधान

**डॉ. धनंजय शर्मा,** सह संचालक अनुसंधान

विश्वविद्यालय तकनीकी प्रकोष्ठ

इंदिरा गांधी कृशि विभवविद्यालय, रायपुर

प्रथम संस्करण वर्श : 2024

प्रतियों की संख्या : 500

# छत्तीसगढ़ में सुगंधित पौधों की व्यावसायिक खेती

लेखक

डॉ. येमन देवांगन, प्रमुख वैज्ञानिक

डॉ. ऐलिस तिर्की, प्रमुख वैज्ञानिक

(अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना-औषधीय एवं सुगंधित पौध)

डॉ. पी. के. जोशी, टीम लीडर एवं प्राध्यापक

(औषधीय संगंध एवं अकाष्ठीय वनोपज उत्कृष्टता केन्द्र)



सम्पादन एवं मुद्रण

विश्वविद्यालय तकनीकी प्रकोष्ठ

इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर

अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना-औषधीय एवं सुगंधित पौध

संचालनालय अनुसंधान सेवाएं

इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग) 492012

Prof. (Dr.) Girish Chandel
डॉ. गिरीश चंदेल
Vice-Chancellor
कुलपति

INDIRA GANDHI KRISHI VISHWAVIDYALAYA
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय
Krishak Nagar, Raipur - 492012
कृषक नगर, रायपुर - 492012
Chhattisgarh, INDIA
छत्तीसगढ़, भारत

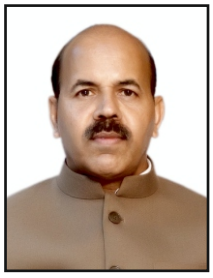

No. PA/VC/188/2024/524
Date : 04/10/2024

# संदेश

भारत में जलवायु की विभिन्नता के कारण कई प्रकार के सुगंणित पौधों की खेती की जा सकती है जिसमें मुख्य रूप से 15 सुगंधित फसलों की अंतर्राष्ट्रीय बाजार में काफी मांग हो, जिसमें मुख्य रूप से सुगंधित फसलें जैसे : लेमन ग्रास, सेट्रोनेला ग्रास, रोशा ग्रास, मेन्था, पचौली, तुलसी आदि है। इनका उपयोग ऐरोमाथेरेपी, सुगंधित साबून, अगरबत्ती, इत्र, सौन्दर्य प्रसाधन, प्राकृतिक कीट नाशक आदि में होता है। इन पौधों की भारत में सीमित खेती हो रही है। इनका विस्तार एवं उन्नत कृषि तकनीकी का प्रचार–प्रसार किया जाना अत्यंत आवश्यक है। इन सुगंधित पौधों की उन्नत खेती करने पर एक तरफ कृषकों की आय में वृद्धि हो सकती है साथ ही साथ विभिन्न प्रकार के हर्बल एवं सुगंधित तेल उद्योग को भी सशक्त किया जा सकता है। भारत में अभी 3 से 3.5 लाख हेक्टेयर में सुगंधित पौधों की खेती की जा रही है जिसका सालाना उत्पादन 40 हजार से 45 हजार मीट्रिक टन है। दिन–प्रतिदिन बढ़ती मांग एवं निर्यात में वृद्धि को देखते हुए सुगंधित फसलों की खेती एक लाभकारी खेती बनकर उभर चुकी है जो वर्तमान में जलवायु परिवर्तन को भी काफी हद तक सहन कर सकती है।

कृषि विश्वविद्यालय अंतर्गत औषधीय एवं सुगंधित पौधों के लिये औषधीय संगंध पौध एवं अकाष्ठीय वनोपज उत्कृष्ठता केन्द्र तथा इन फसलों पर अखिल भारतीय अनुसंधान परियोजना भी कार्यरत है। जिसके तहत इन महत्वपूर्ण फसलों पर अनुसंधान एवं विस्तार के कार्य संचालित किये जा रहे है। मुझे विश्वास है कि प्रदेश में सुगंधित पौधों की उन्नत खेती को बढ़ावा देने के उद्देश्य से यह पुस्तिका संबंधित किसानों के लिये लाभदायक सिद्ध होगी।

शुभकामनाओं सहित .....

(गिरीश चंदेल)

# DIRECTORATE OF RESEARCH SERVICES

संचालनालय अनुसंधान सेवायें

INDIRA GANDHI KRISHI VISHWAVIDYALAYA, RAIPUR - 492012 (C.G.)

इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर - 492012 (छ.ग.)

डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी
संचालक अनुसंधान सेवायें
Dr. Vivek Kumar Tripathi
Director Research


S.No. 1732
Date : 08.10.204

## संदेश

जलवायु परिवर्तन विश्व की सबसे ज्वलंत पर्यावरणीय समस्याओं में से एक है जलवायु परिवर्तन की वजह से दुनिया के औसत तापमान में बढ़ोतरी हो रही है। भूजल स्तर कम होने से अधिक जल मांग वाली परंपरागत फसलें (जैसे– धान, गन्ना) की खेती के लिए सिंचाई एवं मानसून पर निर्भरता बढ़ती जा रही है जिसके कारण सुगंधित फसलों की उन्नत खेती की ओर किसानों का रूझान बढ़ता जा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में सगंध तेलों का अरबों का व्यापार है। मुख्य रूप से सुगंधित फसलें जैसे : लेमन ग्रास, सेट्रोनेला ग्रास, रोशा ग्रास, मेन्था, पचौली, तुलसी आदि है। सुगंधित पौधों का उपयोग पारंपरिक रूप से इत्र और सौन्दर्य प्रसाधनों में किया जाता रहा है क्योंकि वे जो समृद्धि सुगंध पैदा करते है, वह इन पौधों के फाइटोकॉन्स्टिटूएंट के रूप में आवश्यक तेलों के कारण होता है। एरोमाथेरेपी प्राकृतिक चिकित्सा में वैकल्पिक चिकित्सा प्रणालियों में से एक है, जो पूरी तरह से सुगंधित पौधों पर निर्भर करती है और चिकित्सा के लिए आवश्यक तेलों का उपयोग किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य या मनोदशा को बेहतर बनाने के उद्देश्य से किया जाता रहा है। सुगंधित पौधों की कुल ज्ञात लगभग 1500 प्रजातियों में से केवल 500 से थोड़ी अधिक प्रजातियों का ही कुछ विस्तार से अध्ययन किया गया है। उन 50 प्रजातियों में से जो आवश्यक तेलों और सुगंधित रसायनों के व्यावसायिक स्रोतों के रूप में उपयोग करती है, नियमित और बड़े पैमाने पर उपयोग वाले लोगों की कुल संख्या मुश्किल से दो दर्जन से अधिक है।

कृषि विश्वविद्यालय अंतर्गत औषधीय एवं सुगंधित पौधों के लिये औषधीय संगंध पौध एवं अकाष्ठीय वनोपज उत्कृष्ठता केन्द्र तथा इन फसलों पर अखिल भारतीय अनुसंधान परियोजना भी कार्यरत है। जिसके तहत इन महत्वपूर्ण फसलों पर अनुसंधान एवं विस्तार के कार्य संचालित किये जा रहे है। सुगंधित पौधों की उन्नत खेती करने पर एक तरफ कृषकों की आय में वृद्धि हो सकती है साथ ही साथ विभिन्न प्रकार के हर्बल एवं सुगंधित तेल उद्योग को भी बढ़ावा दिया जा सकता है जिससे अतिरिक्त रोजगार सृजन की जा सकती है। मुझे विश्वास है कि प्रदेश में सुगंधित पौधों की उन्नत खेती को बढावा देने के उद्देश्य से यह पुस्तिका संबंधित किसानों के लिये लाभदायक सिद्ध होगी।

पत्रिका के प्रकाशन के लिए शुभकामनाएं।

(विवेक कुमार त्रिपाठी)

# अनुक्रमणिका


| क्र. | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| 1 | छत्तीसगढ़ में सुगंधित फसलों की खेती की संभावनाएं | 1-2 |
| 2 | नीबू घांस की उन्नत खेती | 3-5 |
| 3 | सिट्रोनेला घांस की उन्नत खेती | 6-7 |
| 4 | रोशा घांस की उन्नत खेती | 8-9 |
| 5 | मिन्ट (मेन्था) की उन्नत खेती | 10-12 |
| 6 | खस की उन्नत खेती | 13-14 |
| 7 | पचौली की उन्नत खेती | 15-17 |
| 8 | तुलसी की उन्नत खेती | 18-20 |
| 9 | सुगंधित तेलों के मूल्यवर्धित उत्पाद | 21-23 |
| 10 | सुगंधित पौधों से सुगंधित तेल निकालने की वाष्प आसवन | 24-26 |

# छत्तीसगढ़ में सुगंधित फसलों की खेती की संभावनाएं

सुगंधित पौधों का उपयोग मनुष्यों द्वारा प्राचीन काल से ही बीमारियों के इलाज हेतु, सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री एवं इत्र इत्यादि बनाने हेतु किया जा रहा है। भारत में लगभग 3 लाख हे. में सुगंधित पौधों की खेती की जा रही है जिसका सालाना उत्पादन लगभग 40 हजार मीट्रिक टन है। लेवेन्डर, पिपरमेन्ट, यूक्लिप्टस, लेमनग्रास, रोसमेरी के तेल का उपयोग साबुन, अगरबत्ती, मोमबत्ती एवं ऐरोमाथैरेपी में किया जाता है। भारत द्वारा वर्ष 2023–24 में कुल सिट्रोनेला (US मिलियन $ 10.47), दावना तेल (US मिलियन $ 11. 13), जेरेनियम तेल (US मिलियन $ 49.47), युक्लिप्टस तेल (US मिलियन $ 3.23), लेमनग्रास तेल (US मिलियन $ 8.87), पामारोसा तेल (US मिलियन $ 0.80), पचौली तेल (US मिलियन $ 0.58) एंव रोसा तेल (US मिलियन $ 26.18) का निर्यात किया गया । भारत द्वारा मेन्था, लेमनग्रास एवं पामारोसा का निर्यात सबसे अधिक किया जाता है। इसकी बढ़ती मांग और निर्यात में वृद्धि को देखते हुये संगध पौधों की खेती लाभदायक सिद्ध हो रही है। छ.ग. में इन फसलों की खेती की व्यापक संभावनाएं हैं। इन सुगंधित फसलों में नींबूघाँस, सिट्रोनेला, रोशाघाँस, जापानी पोदीना, तुलसी एवं पचौली की खेती यहाँ आसानी से की जा सकती है एवं इन फसलों की उन्नत उत्पादन तकनीक द्वारा खेती कर किसान भाई कई परंपरागत फसलों की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

सुगंधित फसलें कम उपजाऊ भूमि में भी अच्छा उत्पादन देती हैं। छ0ग0 में भर्री भूमि/कम उपजाऊ भूमि, जो कि धान एवं अन्य फसलों के लिए उपयुक्त नहीं हैं, वहाँ उत्पादकता कम होने के कारण किसानों को ज्यादा लाभ नहीं मिल पाता। ऐसी भूमि में किसान संगध को अपना कर इन फसलों से अपनी आय में वृद्धि आसानी से कर सकते हैं।

इन फसलों की निम्न विशेषतायें हैं :–

- बहुत उपजाऊ जमीन आवश्यकता नहीं।
- ज्यादा देखरेख की आवश्यकता नहीं। कई सुगंधित फसलों से एक बार लगाने के बाद चार–पाँच वर्षों तक उत्पादन लिया जा सकता हैं अर्थात हर वर्ष लगाने की आवश्यकता नहीं होती है।

- जानवरों से नुकसान नहीं।
- तेलों की अच्छी बाजार मांग।
- कीमतों में बहुत ज्यादा उतार चढ़ाव नहीं।

सुगंधित फसलों की व्यावसायिक खेती कर अच्छा लाभ प्राप्त करने हेतु निम्न प्रमुख आवश्यकतायें हैं:–

- इसकी खेती सामूहिक रूप से 20–25 एकड़ में करनी चाहिए।
  - ❖ अच्छे उत्पादन एवं लाभ हेतु सिंचाई की सुविधा हो।
  - ❖ आसवनयंत्र की आवश्यकता (कीमत लगभग 3– 5 लाख रूपये)।
  - ❖ उन्नत जातियों के पौध सामग्री की आवश्यकता।
  - ❖ जलभराव वाले खेत इसके लिए उपयुक्त नहीं।

**भ्रातियां -** इसकी खेती से सबंधित कई भ्रातियां हैं जिसके कारण किसान भाई इसकी खेती से डरते हैं जो कि वास्तव में सही नहीं हैं जैसे :–

- बहुत अधिक तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता चाहिए।
- बेचने में काफी परेशानी ।
- पानी की आवश्यकता नहीं ।
- बहुत ज्यादा लाभ।

वस्तुतः किसानों के मध्य उक्त भ्रांतियाँ सही नहीं है। सत्य तो यह है कि छत्तीसगढ़ में कम उपजाऊ भूमि में भी इन फसलों से किसान परंपरागत फसल की तुलना में अधिक आय प्राप्त कर सकते हैं। विश्वविद्यालय में औषधीय एवं सुगंधित फसलों की खेती को बढ़ावा देने के लिए इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय में औषधीय, सगंध एवं अकाष्ठीय वनोपज उत्कृष्ठता केन्द्र की स्थापना की गई है । यहां इन पौधों पर अनुसंधान एवं विस्तार कार्य किया जाता हैं। औषधीय एवं सगंध पौधों का हर्बल उद्यान भी तैयार किया गया है जहां विभिन्न प्रकार की 150 से अधिक प्रजातियों को लगाया गया है। केन्द्र द्वारा समय–समय पर छात्रों, किसानों एवं अधिकारियों को इनकी खेती का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इसके अलावा सगंध पौधों से प्राप्त सुगंधित तेल के उपयोग से साबुन, अगरबत्ती, मोमबत्ती इत्यादि बनाने को प्रशिक्षण भी स्वयं सहायता समूह को दिया जाता है, जिससे की अपनी आय में वृद्धि कर ज्यादा लाभ अर्जित कर सकें।

# नीबू घॉस की उन्नत खेती

| | | |
|---|---|---|
| वानस्पतिक नाम एवं कुल | : | सिम्बोपोगॉन फ्लैक्सिओसस |
| कुल | : | पोएसी |

## 1. संक्षिप्त परिचय :

लेमनग्रास ईस्ट इण्डिया लेमनग्रास के नाम से भी जाना जाता है। यह एक बहुवर्षीय घॉस है जो औसतन 4–5 फीट ऊॅची होती है। इसके पत्ते 100–140 सेन्टीमीटर लम्बे होते है। इसके तने पौधे के निचले हिस्से से गुच्छे के रूप में निकलते हैं तथा पत्तियाँ एक से दो सेन्टीमीटर चौड़ी होती है एवं ऊपर की तरफ नुकीली होती हैं। पौधों की ऊॅचाई एवं पत्तियों की चौड़ाई विभिन्न प्रजातियों में अलग–अलग होती हैं। इसकी पत्तियों से सुगंधित तेल प्राप्त किया जाता है जो विटामिन ए निर्माण के लिये कच्चे माल स्त्रोत है। विश्व में लेमनग्रास तेल का उत्पादन लगभग 1300 मीट्रिक टन प्रतिवर्ष होता है। भारत विश्व के 80 से अधिक देशों को इसके तेल का निर्यात करता हैं। 1997–2002 और 2017–2020 की अवधि में भारतीय लेमनग्रास तेल की मांग 80 हजार किलो बढ़कर 25052 हजार किलो हो गई जिसकी कीमत 413 लाख बढ़कर 30874 लाख विदेशी मुद्रा रही। इस प्रकार विश्व में भारत लेमनग्रास के तेल का प्रमुख निर्यातक है। छत्तीसगढ़ में वर्ष 2022–23 में इसका रकबा 1109 हे. व उत्पादन 14464 किलो रहा। प्रदेश के कोरिया, बस्तर एवं बलरामपुर में इसका उत्पादन मुख्य रूप से लिया जाता रहा है।

**औषधीय महत्व** : नींबू के सुगंध वाले साबुन एवं इत्र के निर्माण में। तेल का उपयोग फर्श साफ करने वाली लोशन, डियोंडोरेंट तथा कीटनाशक दवाओं के निर्माण में। नींबूघास तेल के मुख्य घटक सिट्राल से एल्फा तथा बीटा आयोनोन तैयार किये जाते हैं। बीटा आयोंनोन को संश्लेषित करने विटामिन ए तैयार किया जाता हैं। नींबूघास के पत्तों से हर्बल चाय भी तैयार की जाती हैं।

**उपयोगी भाग** : पत्ती (इससे तेल निकाला जाता है )

**प्रमुख सक्रिय तत्व** : सिट्रॉल ए एवं बी (75 से 85 प्रतिशत)

## 2. संक्षिप्त कृशि कार्यमाला :

i . **भूमि का चयन** :- अच्छे जल निकास वाली औसत उर्वरता वाली मृदायें, जिनका पी.एच. 6.5–8.5 के बीच हो सर्वोत्तम होती हैं। खेत तैयार करने हेतु सर्वप्रथम मिट्टी पलटने वाले हल के द्वारा

गहरी जोताई करें तत्पश्चात डिस्कहैरो या कल्टीवेटर द्वारा जोताई कर मिट्टी को भुरभुरी बना लेवें, अंत में पाटा चला कर खेत को समतल करने के बाद स्लिप को लगावें।

ii. **बीज का मात्रा एवं बोने की विधि** :- सिंचाई की पर्याप्त सुविधा होने पर नींबू घास की बुवाई वर्ष में कभी भी (ज्यादा गर्मी के समय का छोड़कर) की जा सकती है, परंतु पैदावार की दृष्टि से इसकी बुवाई का सर्वोत्तम समय फरवरी– मार्च तथा जुलाई–अगस्त माह है। लेमनग्रास की रोपाई प्रायः जड़ों से उत्पन्न स्लिप से ही की जाती है तथा यही विधि सर्वाधिक उपयोगी, लाभकारी तथा सुविधाजनक भी है। स्लिप तैयार करने के लिये सर्वप्रथम लेमनग्रास के पुराने पूर्णतः विकसित पौधों को उखाड़ कर तने को 20–25 से.मी. उनके साथ लगी पत्तियों सहित काट लिया जाता हैं एवं स्लिप को पृथक कर लिया जाता है। पौधे से पौधे तथा कतार से कतार के बीच की दूरी क्रमशः 50–60 तथा 40–50 से.मी. उपयुक्त मानी जाती हैं। प्रति हे. करीब 50–55 हजार स्लिप्स की आवश्यकता होती हैं ।

iii. **बीजोपचार** :- इस फसल के लिये समान्यतः बीजोपचार की आवश्यकता नहीं होती है।

iv. **अनुशंसित किस्में** :- सी. एन..–5, कृष्णा, छत्तीसगढ़ लेगमनग्रास–1, सी. के. पी.–25, प्रगति, प्रमाण, कावेरी, नीमा, कलाम, सिम शिखर, चिरहरित। कुछ प्रमुख किस्मों का विवरण निम्नानुसारः–

| | |
|---|---|
| सी.के.पी.–25 | यह किस्म सिंचित अवस्था में 60 टन प्रति हे. हरी घॉस का उत्पादन देती है इसमें तेल की मात्रा लगभग 1 प्रतिशत है। |
| कृष्णा<br><br>नीमा | यह किस्म सिंचित एवं वर्शा आधारित क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है जिसमें तेल की मात्रा 0.7 प्रतिशत प्राप्त होती है।<br>यह बौनी किस्म है जिसमे सिट्राल की मात्रा कृष्णा से अधिक है व तेल 0.8–1 प्रतिशत पाया जाता है। |
| छत्तीसगढ़ लेमनग्रास–1 | यह किस्म इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित की गई है जिसमें तेल 0.8–1 प्रतिशत तथा सिट्राल 81.4 प्रतिशत पाया गया है यह मध्यम जल भराव स्थिति के लिये उपयुक्त है जो सूखा सहनशील भी है। |

v. **खाद एवं उर्वरक प्रबंधन** :- 150:60:60 किलो प्रति हे. की दर से नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश प्रतिवर्ष (कार्बनिक एवं अकार्बनिक दोनो से देवें)। नत्रजन को 3 से 4 भाग में प्रत्येक कटाई के बाद बांट कर देना चाहियें।

vi. **जैविक खेती की सम्भावनायें** :- लेमनग्रास की खेती के लिये जैविक खेती अधिक लाभदायक नहीं

होती है। क्योंकि इसकी पत्तियॉ ही प्रमुख व्यावसायिक भाग है जिसके उत्पादन के लिये नत्रजन की अधिक आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति अकार्बनिक उर्वरकों के माध्यम से ही की जा सकती है।

vii. **खरपतवार प्रबंधन** :- प्रारंभिक अवस्था में यदि खरपतवार हो तो निंदाई करना आवश्यक हैं। घाँस बढ़ जाने के बाद वह स्वयं ही नींदा को दबा देती हैं। प्रत्येक कटाई के बाद निंदाई एवं हल्की गुड़ाई आवश्यक करनी चाहिए। सामान्यतः मानसून के बाद फसल अच्छी तरह स्थापित हो जाती है और इस पर किसी भी प्रकार से खरपतवार के प्रकोप से नहीं होता।

viii. **सिंचाई एवं जल निकास** :- अच्छे उत्पादन हेतु सिंचाई की सुविधा होना आवश्यक हैं वर्षा के मौसम में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती किन्तु सर्दियों में 2–3 एवं गर्मी के दिनों में 5–6 सिंचाई पर्याप्त रहती हैं। प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई अत्यन्त आवश्यक होती है। अधिक जल भराव इस फसल के नुकसानदायक है अतः जल निकास की समुचित व्यवस्था करें।

ix. **पौध संरक्षण** :- चूंकि इस पौधे की रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है अतः इस फसल पर सामान्यतः किसी प्रकार की बीमारी या कीट–व्याधि का प्रकोप नहीं होता है।

x. **फसल कटाई एवं भण्डारण प्रबंधन** :- रोपाई के लगभग 4–5 माह बाद प्रथम कटाई के लिए फसल तैयार हो जाती हैं। इस समय फसल को भूमि की सतह से 10 से 15 सेमी. ऊपर से काटा जाना चाहिए। कटाई के उपरांत निदाई– गुड़ाई करें एवं शेष नत्रजन की एक तिहाई मात्रा डालना चाहिए। फसल एकदम तेजी से बढ़ने लगती हैं, जो अगली कटाई हेतु लगभग 3 माह बाद पुनः तैयार हो जाती है। इस प्रकार, प्रत्येक 3 माह के अन्तर पर वर्ष में चार बार लेमनग्रास की कटाई की जा सकती है। एक बार फसल लगा देने के बाद कम से कम आने वाले चार सालों तक ये क्रम चलता रहता हैं। छत्तीसगढ की परिस्थितियों अनुसार वर्ष में लगभग तीन से चार कटाई की जा सकती हैं। सिंचित अवस्था में प्रथम वर्ष में लगभग 100 कि.ग्रा./हे. एवं इसके पश्चात् 175–200 कि.ग्रा. /हे. प्रतिवर्ष सुगंधित तेल प्राप्त होता है। निष्कर्षित तेल को एल्यूमिनियम के पात्रों में रखा जा सकता है।

xi. **आसवन** :- नीबू घॉस की पत्तियों का आसवन किया जाता है, इस कार्य हेतु वाष्प आसवन या जल आसवन विधि का उपयोग किया जाता है। प्रायः फसल काटने के उपरांत उसे कुछ समय तक खेत में ही अथवा किसी छायादार स्थान पर रख दिया जाता है तदुपंरात ही घास का आसवन किया जाता है। आसवन की प्रक्रिया ढाई से तीन घंटों में पूरी हो जाती हैं। तेल की मात्रा 0.5 से 0.8 प्रतिशत तक होती है।

xii. **आर्थिक विश्लेषण** :- इस फसल के उत्पादन से चार वर्षों की समयावधि में औसतन प्रति वर्ष लगभग लगभग रू. 50,000 से 60,000 प्रति हे. का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

# सिट्रोनेला घॉस की उन्नत खेती

| | |
|---|---|
| वानस्पतिक नाम एवं कुल : | सिम्बोपोगॉन विन्टेरियेनस |
| कुल : | पोएसी |

## 1. संक्षिप्त परिचय :

यह एक बहुवर्षीय घॉस होती है जिसकी पत्तियॉ हल्के रंग की होती हैं। पामारोशा तथा लेमनग्रास की तुलना में इसकी पत्तियॉ ज्यादा चौड़ी तथा स्लिप्स भी अपेक्षाकृत ज्यादा मोटी होती हैं।

**औषधीय महत्व** :- साबुन, क्रीम निर्माण में सुगंध हेतु, ओडोमॉस, एंटीसेप्टिक क्रीमों, सौन्दर्य प्रसाधनों में ।

**उपयोगी भाग** :- पत्तियॉ (इसमें तेल निकाला जाता हैं)

**प्रमुख सक्रिय तत्व** :- सिट्रोनेला एवं जिरेनियाल

## 2. संक्षिप्त कृशि कार्यमाला :

i . **भूमि का चयन** :- अच्छे जल निकास वाली औसत उर्वरता वाली मृदायें, जिनका पी.एच. 6.5–8.5 के बीच हो सर्वोत्तम होती हैं। ऊसर एवं असिंचित मृदा में भी इसकी सफलतापूर्वक खेती की जा सकती है। खेत तैयार करने हेतु सर्वप्रथम मिट्टी पलटने वाले हल के द्वारा गहरी जोताई करें तत्पश्चात डिस्कहैरो या कल्टिवेटर द्वारा जोताई कर मिट्टी को भुरभुरी बना लेवें, अन्त में पाटा चला कर खेत को समतल करने के बाद स्लिप को लगावें।

ii. **बीज का मात्रा एवं बोने की विधि** :- सिंचाई की पर्याप्त सुविधा होने पर सिट्रोनेला की बुआई वर्ष में कभी भी (ज्यादा गर्मी के समय का छोड़कर) की जा सकती है, परंतु पैदावार की दृष्टि से इसकी बुवाई का सर्वोत्तम समय फरवरी–मार्च तथा जुलाई–अगस्त माह है। सिट्रोनेला की रोपाई प्रायः जड़ की स्लिप से ही की जाती हैं तथा यही विधि सर्वाधिक उपयोगी, लाभकारी तथा सुविधाजनक भी है। स्लिप से बुवाई करने में सर्वप्रथम सिट्रोनेला के पुराने पूर्णतः विकसित पौधों को उखाड कर तने को 20–25 से.मी. उनके साथ लगी पत्तियों सहित काट लिया जाता हैं। पौधे से पौधे तथा कतार से कतार के बीच की दूरी क्रमशः 50x40 तथा 60x30 से.मी. उपयुक्त मानी जाती हैं। प्रति हेक्टेयर करीब 50–55 हजार स्लिप्स की आवश्यकता होती हैं ।

iii. **बीजोपचार** :- इस फसल के लिये स्लिप को कार्बनडाजिम के एक प्रतिशत घोल में 5 से 10 मिनट तक उपचारित करने के पश्चात लगाया जाना चाहिये।

iv. **अनुशंसित किस्मे** :- बायो– 13, मंजूशा, मंदाकिनी, सिम–जीवा, जलपल्लवी इत्यादि।

v. **खाद् एवं उर्वरक प्रबंधन** :- अच्छी उपज के लिये गोबर खाद या कम्पोस्ट 10–15 टन प्रति हे. भूमि की तैयारी के समय डालना चाहिये। साथ ही, उर्वरक के रूप में 50:25:25 किग्रा. नत्रजन, पोटाश एंव फास्फोरस भी उपयोग में लिया जाना चाहिये।

vi. **जैविक खेती की सम्भावनायें** :- सिट्रोनेला की खेती के लिये जैविक खेती अधिक लाभदायक नहीं है क्योंकि इसकी पत्तियॉ ही प्रमुख व्यावसायिक भाग है जिसके उत्पादन के लिये नत्रजन की अधिक आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति अकार्बनिक उर्वरकों के माध्यम से ही की जा सकती है।

vii. **खरपतवार प्रबंधन** :- खेत की खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए। दो से तीन निदाई–गुड़ाई प्रतिवर्ष करने से पौधे अच्छे से बढ़ते है एवं सकर्स अधिक निकलते हैं। समय–समय पर बीमार पौधे एवं सूखे पुष्पों के डंठल को भी हटाना चाहिए।

viii. **सिंचाई एवं जल निकास** :- अच्छे उत्पादन हेतु सिंचाई की सुविधा होना आवश्यक हैं वर्षा के मौसम में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, सर्दियों में 2–3 एवं गर्मी के दिनों में 5–7 सिंचाई पर्याप्त रहती हैं। प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई उत्यन्त आवश्यक होती है।

ix. **पौध संरक्षण** :- चूंकि इस पौधे की रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है अतः इस फसल पर समान्यतः किसी प्रकार की बीमारी या कीट–व्याधि का प्रकोप नहीं होता है।

x. **फसल कटाई एवं भण्डारण प्रबंधन** :- रोपाई के लगभग 4–5 माह बाद प्रथम कटाई के लिए फसल तैयार हो जाती हैं। इस समय फसल को भूमि की सतह से 25 से 30 सेमी. ऊपर से काटा जाना चाहिए। कटाई के उपरांत निदाई– गुडाई करें एवं शेष नत्रजन की एक तिहाई मात्रा डालना चाहिए। इसके पश्चात् फसल तेजी से बढ़ने लगती हैं जो अगली कटाई हेतु लगभग 3 माह बाद पुनः तैयार हो जाती है। इस प्रकार प्रत्येक 3 माह के अन्तर पर वर्ष में 3–4 बार की कटाई की जा सकती है। एक बार फसल लगा देने के बाद कम से कम आने वाले चार से पॉच सालों तक ये क्रम चलता रहता हैं। सिट्रोनेला की प्रति वर्ष की जाने वाली कटाइयों की संख्या भूमि की उर्वरता, देखरेख तथा पानी की उपलब्धता आदि पर निर्भर करती हैं। वर्ष में लगभग तीन से चार कटाई की जा सकती हैं। सिंचित अवस्था में प्रथम वर्ष लगभग 100–125 किलो एवं आगामी वर्षों में 200–250 कि.ग्रा. तेल प्रति वर्ष/हे. प्राप्त होती हैं।

xi. **आसवन** :- सिट्रोनेला की पत्तियों का आसवन किया जाता है, इस कार्य हेतु वाष्प आसवन या जल आसवन विधि का उपयोग किया जाता है। प्रायः फसल काटने के उपरांत उसे कुछ समय तक खेत में ही अथवा किसी छायादार स्थान पर रख दिया जाता है तदुपंरात ही घास का आसवन किया जाता है। आसवन की प्रक्रिया ढाई से तीन घंटों में पूरी हो जाती हैं।

xii. **आर्थिक विश्लेषण** :- इस फसल के उत्पादन से चार वर्षो की समयावधि में औसतन प्रति वर्ष लगभग लगभग रू. 50,000 से 60,000 प्रति हे. का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

# रोशाघॉस की उन्नत खेती

| | |
|---|---|
| वानस्पतिक नाम एवं कुल : | सिम्बोपोगॉन मार्टिनी |
| कुल : | पोएसी (ग्रेमिनी) |

## 1. संक्षिप्त परिचय :-

रोशाघास का पौधा झाड़ीनुमा होता है। इसका तना पतला होता हैं, यह एक बहुवर्षीय घास है जो औसतन 2–3 फीट ऊॅची होती है। इसकी जड़े बहुवर्षीय पत्तियॉ नुकीली एवं पत्तों को मलने पर गुलाब जैसी सुगन्ध आती हैं। पुष्प रक्ताभ वर्ण के साथ मंज्जरियों में खिलते हैं।

**औषधीय महत्व** :- साबुन, क्रीम निर्माण में सुगंध हेतु, ओडोमॉस, एंटीसेप्टिक क्रीमों, सौन्दर्य प्रसाधनों में ।

**उपयोगी भाग** :- पत्तियॉ (इसमें तेल निकाला जाता हैं)

**प्रमुख सक्रिय तत्व** :- जिरेनियाल, जिरेनायाल एसीटेट

## 2. संक्षिप्त कृषि कार्यमाला :-

i. **भूमि का चयन** :- उचित जल निकास वाली सामान्य से 6.5 से 8 पी. एच. वाली मृदायें उपयुक्त मानी जाती हैं। जल भराव इस फसल के लिये हानिकारक होता है। असिंचित एवं ऊसर मृदा में भी इसकी खेती की जा सकती है। खेत तैयार करने हेतु सर्वप्रथम मिट्टी पलटने वाले हल के द्वारा गहरी जुताई करें। तत्पश्चात डिस्कहैरो या कल्टिवेटर द्वारा जोताई कर मिट्टी को भुरभुरी बना लेवें, अन्त में पाटा चला कर खेत को समतल करने के बाद स्लिप को लगावें।

ii. **बीज का मात्रा एवं बोने की विधि** :- रोशाघॉस को बीज द्वारा एवं जड़ों की स्लिप द्वारा तैयार किया जा सकता है। बीज को सीधा खेत में छिटकवां विधि से बोने के लिए 10–12 कि.ग्रा. बीज, कतार में बोने के लिये 2.5–5 कि. ग्रा. बीज को 1 मीटर दूरी पर बनी कतारों में लगाया जा सकता है। बीज की गहराई 1–1.5 सेमी. से अधिक नहीं बोनी चाहिए जिससे उसके अंकुरण पर सीधा प्रभाव पड़ता हैं। रोशाघास को जड़ों की स्लिप द्वारा भी लगाया जाता हैं। इस विधि में रोशाघास के पुराने पौधों को उखाड़ कर उनको अलग–अलग करके स्लिप तैयार की जाती है तथा इसको खेत में रोपित किया जाता हैं। छोटी कुदाली से गढ्ढे करके स्लिप को इस तरह रोपा जाता चाहिए जिससे स्लिप गढ्ढे में सीधी खड़ी रहे तथा इसकी जड़े मुडें नहीं। जड़ों की स्लिप से लगाने के लिये 40,000 से 50,000 स्लिप्स प्रति हे. की दर आवश्यकता होती है जिसे 60x30 से.मी. की दूरी लगावें। नर्सरी में पौध तैयार करने के लिये बीजों को नर्सरी बेड बनाकर 60 से.मी. की दूरी लगायें

एवं 30–40 दिन की नर्सरी की रोपाई की जा सकती है। नर्सरी मे गोबर या वर्मी खाद 1–1.5 कि. ग्रा. प्रति वर्ग मी. अवश्य मिला दे जिससे पौधे अच्छे व स्वस्थ होंगे।

iii. **बीजोपचार** :- इस फसल के लिये स्लिप को कार्बनडाजिम के एक प्रतिशत घोल में 5 से 10 मिनट तक उपचारित करने के पश्चात लगाया जाना चाहिये।

iv. **अनुशंसित किस्मे** :- तृष्णा, पी.आर.सी.–1, तृप्ता, सिमैप–हर्ष, सोफिया एवं मोतिया

v. **खाद् एवं उर्वरक प्रबंधन** :- अच्छी उपज के लिये गोबर खाद या कम्पोस्ट 10–15 टन प्रति हे. भूमि की तैयारी के समय डालना चाहिये। साथ ही 150:50:50 किलो नत्रजन, पोटाश एंव फास्फोरस प्रति हे. भी देवें। नत्रजन को 3 से 4 भाग में बांट कर देना चाहियें। फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा अंतिम जुताई के समय खेत में मिला देना चाहिए।

vi. **जैविक खेती की सम्भावनायें** :- रोशाघॉस की खेती के लिये जैविक खेती अधिक लाभदायक नहीं है क्योकि इसकी पत्तियॉ ही प्रमुख व्यावसायिक भाग है जिसके उत्पादन के लिये नत्रजन की अधिक आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति अकार्बनिक उर्वरकों के माध्यम से ही की जा सकती है।

vii. **खरपतवार प्रबंधन** :- प्रारंभिक अवस्था में यदि खरपतवार हो तो निंदाई करना आवश्यक हैं। घाँस बढ़ जाने के बाद व स्वयं ही नींदा को दबा देती हैं। प्रत्येक कटाई के बाद निंदाई एवं हल्की गुडाई आवश्यक करनी चाहिए।

viii. **सिंचाई एवं जल निकास** :- अच्छे उत्पादन हेतु सिंचाई की सुविधा होना आवश्यक हैं वर्षा के मौसम में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, सर्दियों में 2–3 एवं गर्मी के दिनों में 5–6 सिंचाई पर्याप्त रहती हैं। प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई अत्यन्त आवश्यक होती है। सिंचाई करते समय इस बात का ध्यान रखे कि खेत में जल का भराव न होने पाये।

ix. **पौध संरक्षण** :- चूंकि इस पौधे की रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है अतः इस फसल पर समान्यतः किसी प्रकार की बीमारी या कीट–व्याधि का प्रकोप नहीं होता है।

x. **फसल कटाई एवं भण्डारण प्रबंधन** :- रोशाघास की कटाई जमीन से 10 से 15 सेमी. छोड़कर 50 प्रतिशत पुष्प आने की अवस्था में की जाती है। वर्षा ऋतु में फूल आने की प्रतीक्षा नहीं करना चाहिये। फसल की पूर्ण परिपक्वता से 15–20 दिन पहले काटने से फसल की मृत्युदर में अच्छी खासी कमी की जा सकती हैं।

xi. **आसवन** :- रोशाघास की पत्तियों का आसवन किया जाता है, इस कार्य हेतु वाष्प आसवन या जल आसवन विधि का उपयोग किया जाता है। प्रायः फसल काटने के उपरांत उसे कुछ समय तक खेत में ही अथवा किसी छायादार स्थान पर रख दिया जाता है तदुपंरात ही घास का आसवन कियार जात है। आसवन की प्रक्रिया ढाई से तीन घंटों में पूरी हो जाती हैं।

xii. **आर्थिक विश्लेशण** :- इस फसल के उत्पादन से लगभग रू. 90,000 से 1,20,000 प्रति हे. का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

# मिन्ट (मेन्था) की उन्नत खेती

| | |
|---|---|
| वानस्पतिक नाम एवं कुल : | मेन्था अरवेन्सिस |
| कुल : | लेमिएसी |

## 1. संक्षिप्त परिचय :

भारत में जापानी पोदीना की खेती सबसे अधिक होती है। विश्व में मेन्था उत्पादन में भारत का प्रथम स्थान है। भारत में मेन्था का सर्वाधिक उत्पादन उत्तर प्रदेश में होता है। इसके अलावा पंजाब, हरियाणा, बिहार, मध्यप्रदेश में भी इसकी खेती की जाती है। इसकी खेती के लिए सिंचाई की सुविधा एवं आसवन यंत्र होना आवश्यक है।

**औषधीय महत्व** :- इसका उपयोग पान मसाला, क्रिस्टल निमार्ण में, पेनबाम, कफ सीरप, टूथपेस्ट एवं दवायें, बेकरी तथा प्रसाधन सामग्री बनाने में किया जाता है।

**उपयोगी भाग** :- पत्ती (इससे तेल निकाला जाता है)

**प्रमुख सक्रिय तत्व** :- मेन्थोल मिंट में मेन्थोल, पिपरमिन्ट में पिपरिटौन, मेन्थोल एवं मैंथाफ्यूरान, स्पियरमिन्ट में कार्वोन, बरगॉमाट मिन्ट में लिनालूल एसीटेट।

## 2. संक्षिप्त कृषि कार्यमाला :-

i. **भूमि का चयन** :- बलुई डोमट मिट्टी मेन्था उत्पादन के लिये अच्छी मानी जाती है। अच्छे जल निकास वाली औसत उर्वरता वाली मृदायें, जिनका पी.एच. 6.5–7.5 के बीच हो सर्वोत्तम होती हैं।

ii. **बीज का मात्रा एवं बोने की विधि** :- मेंथा की रोपाई का उचित समय जनवरी–फरवरी होता है। खेत में मेन्था को दो प्रकार से लगाया जा सकता है पहला सकर्स द्वारा तथा दूसरा पौध द्वारा। जिन क्षेत्रों में मेन्था की खेती जनवरी–फरवरी में लगानी हो वहां सकर्स को प्रयोग में लाते हैं तथा जिन क्षेत्रों में 15 फरवरी के बाद फसल के रूप में मेन्था उगाना हो वहां पौध रोपण द्वारा फसल ली जाती है। इस दशा में सकर्स (जड़ों) को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर नर्सरी की क्यारियों में सघनता से

बुवाई कर देते हैं एवं इनसे पौधे तैयार हो जाते हैं। इसके पश्चात् इन पौधों को खेत में 40–45 दिन बाद रोपित किया जाता है। एक हेक्टेयर जापानी मेन्था की सीधी बुवाई के लिए 350–500 कि.ग्रा. एवं रोपाई द्वारा फसल तैयार करने के लिए 100–125 कि.ग्रा सकर्स की आवश्यकता पड़ती है।

iii. **बीजोपचार** :- इस फसल के लिये स्लिप को कार्बनडाजिम के 1–1.5 प्रतिशत घोल में 10–20 मिनट तक उपचारित करने के पश्चात लगाया जाना चाहिये।

iv. **अनुशंसित किस्मे** :- मेन्थाल मिन्ट : सिम क्रान्ति, सिम सरयू, कोसी, पिपरमिन्टः सीमैप पात्रा, सिम इन्डस, सिम–मधुरस, कुकैरल, प्रान्जल, सिपरयमिन्टः एम.एस.एस.5, अर्का नीरा, नीर कालका, बारगॉमाटमिन्टः किरन।

v. **खाद एवं उर्वरक प्रबंधन** :- दो कटाईयों के लिये 150:60:40 नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश तथा एक कटाई के लिये 80:40:40 कि.ग्रा. नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश पर्याप्त रहता है। काबर्निक एवं अकाबर्निक दोनों ही प्रकार की खाद का प्रयोग करना चाहिए। नत्रजन की एक तिहाई मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय एवं नत्रजन की शेष मात्रा खड़ी फसल में दो भाग में देना चाहिए।

vi. **जैविक खेती की सम्भावनायें** :- इसकी खेती के लिये जैविक खेती अधिक लाभदायक नहीं है क्योंकि इसकी पत्तियॉ ही प्रमुख व्यावसायिक भाग है जिसके उत्पादन के लिये नत्रजन की अधिक आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति अकार्बनिक उर्वरकों के माध्यम से ही की जा सकती है।

vii. **खरपतवार प्रबंधन** :- प्रारंभिक अवस्था में यदि खरपतवार हों तो निंदाई करना आवश्यक हैं। प्रत्येक कटाई के बाद निंदाई एवं हल्की गुडाई अवश्य करें।

viii. **सिंचाई एवं जल निकास** :- मेन्था की फसल में ज्यादा पानी की आवश्यकता होती है। इसलिए खेत में नमी बनाये रखने के लिए फरवरी–मार्च में 20–25 दिन के अन्तराल से एवं अप्रैल–मई में 10–12 दिन के अन्तराल से पानी देना आवश्यक है। सिंचाई की मात्रा जलवायु एवं भूमि पर निर्भर होती है।

ix. **पौध संरक्षण** :- मेंथा की फसल को निम्न कीट व रोग नुकसान पहुॅचाते हैं। अतः इनका समयानुसार नियंत्रण आवश्यक है :–

1. **दीमक** :- इससे बचाव के लिए खेत में उपयुक्त सिंचाई करना आवश्यक होता है। सूखी भूमि में दीमक अधिक आती है। इसके रोकथाम के लिए सिंचाई के साथ क्लोरपायरिफॉस 800 मि.ली/हे. का प्रयोग करना चाहिए।

2. **रोयेंदार या पत्ती काटने वाले गिडार** :- इन कीड़ों से फसल को बचाने के लिए एक लीटर क्विनालफॉस को 1000 लीटर पानी में घोलकर एक हे. क्षेत्रफल में छिड़काव करना चाहिये।

3. **तने को काटने वाली सूंडी** :- अंकुरित जड़ों को यह सूंडी अधिक हानि पहुँचाती है। इसकी रोकथाम हेतु फोरेट 10–12 किलो प्रति हे. को फसल की बुवाई के पहले खेत में मिला देना चाहिए।

4. **जड़ों का सड़ना** :- इस बीमारी से पहले पौधों का मुरझाना आरम्भ होता है और अंत में पौधा पूर्णतया सूख जाता है। रोगग्रस्त पौधों के जड़ से उखाड़कर फेंक देना चाहिए तथा बुवाई के समय सकर्स को किसी फफूँदी नाशक दवा जैसे कार्बनर्डाजिम के 2 प्रतिशत घोल से उपचारित करके लगाना चाहिए।

5. **एफिड** :- इस कीड़े का प्रकोप फरवरी के महीने में स्पियरमिंट पर होता है। इसकी रोकथाम हेतु एक लीटर मेटासिस्टाक्स का 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर एक हे. में छिड़काव करना चाहिए।

x. **फसल कटाई एवं भण्डारण प्रबंधन** :- बुआई के 120 दिन बाद फसल कटाई के योग्य हो जाती है। फसल की प्रथम कटाई के लगभग 70–80 दिन बाद दूसरी कटाई करनी चाहिए। कटाई के 8–10 पूर्व सिंचाई बंद कर देवें। फसल के पूर्ण रूप से पक जाने के बाद पौधों की पत्तियाँ हल्की पीली पड़ जाती हैं एवं पत्तियों को छूने पर वे सख्त लगने लगती हैं। सिंचित अवस्था में तेल का 175–200 कि.ग्रा./हे. (दो कटाई में) प्राप्त होता है।

xi. **आसवन** :- इसका आसवन वाष्प एवं जलवाष्प आसवन दोनो विधि द्वारा किया जा सकता हैं। यदि फसल की कटाई के बाद आसवन करने में देरी है तो फसल को खुले एवं छाया में फैले रहने देना चाहिए अन्यथा पत्तियों में सड़न हो सकती हैं।

xii. **आर्थिक विश्लेषण** :- इस फसल के उत्पादन से लगभग रू. 90,000 से 1,20,000 प्रति हे. का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

# खस की उन्नत खेती

| | |
|---|---|
| वानस्पतिक नाम एवं कुल : | क्रायसोपोगॉन जिजेनिऑइड्ज |
| कुल : | पोयेसी |

## 1. संक्षिप्त परिचय :-

खस या वैटीवर घॉस कुल का पौधा है। खस की जड़ो से सुगंधित तेल निकाला जाता हैं। तेल का उपयोग सुगंधित सुपारी निर्माण, परफ्यूमरी तथा शर्बत आदि में किया जाता है। खस की जड़ों से तेल निकालने के बाद जो घॉस बचती है उससे खिड़की एवं कूलर के पर्दे बनायें जाते हैं।

**औषधीय महत्व** :- इसकी जड़ो से खस का तेल निकाला जाता है। इस तेल का उपयोग विभिन्न प्रसाधन सामग्रियों, जैसे साबुन, ठंडे पेयों, दवाओं तथा अन्य सुगंध युक्त उत्पादों को बनाने में किया जाता है।

**उपयोगी भाग** :- जड़

**प्रमुख सक्रिय तत्व** :- खुसीमॉल, वेटीविनीन

## 2. संक्षिप्त कृषि कार्यमाला :-

i. **भूमि का चयन** :- खस की खेत मुख्य रूप से इसकी जड़ों के लिये की जाती है अतः इसके लिये हल्की मिट्टी वाली बलुई दोमट एवं बलुई भूमि उपयुक्त होती है जिसमें जड़ों की खुदाई में आसानी से हो सके। इस प्रकार की मृदाओं से प्राप्त जड़े रेशेदार एवं आकार में लम्बी होती हैं। खेत की तैयारी करते समय सर्वप्रथम मिट्टी पलटने वाले हल के द्वारा गहरी जुताई करें तत्पश्चात डिस्क हैरो या कल्टिवेटर द्वारा जुताई कर मिट्टी को भुरभुरी बना लेवें, अन्त में पाटा चला कर खेत को समतल करने के बाद स्लिप को लगावें।

ii. **बीज का मात्रा एवं बोने की विधि** :- यदि सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था हो तो खस की स्लिप्स को जमीन में 5 सेमी. गहराई में रोपण करना चाहिए। स्लिप्स का रोपण 50X50 सेमी. अथवा 60X60 की दूरी पर करना चाहिए। खस का प्रवर्धन बीज द्वारा एवं वानस्पतिक भागों द्वारा किया जा सकता है। वानस्पतिक विधि से खस का प्रवर्धन करने के लिए 5 से 6 माह पुराने पौधे से कलमें या स्लिप बना ली जाती है। बड़े पैमाने पर खस की खेती करने के लिए स्लिप द्वारा प्रसारण करना उचित माना जाता है। स्लिप तैयार करने के लिए 5–6 माह पुरानी फसल के पौध को चुना जाता है और उन्हें जमीन से 30–40 से.मी. की ऊंचाई पर से काट दिया जाता है। बनाई गई स्लिप में 2–3 कल्ले होने चाहिए।

iii. **बीजोपचार** :- इस फसल के लिये स्लिप को कार्बनडाजिम के एक प्रतिशत घोल में 5 से 10 मिनट तक उपचारित करने के पश्चात लगाया जाना चाहिये।

iv. **अनुशंसित किस्मे** :- सीमैप खस–15, सीमैप खस–22, सीमैप–कुशनोलिका, के .एस.–1, के. एस–2, धारीणी, केसरी, गुलाबी, सिम–वृद्धि आदि।

v. **खाद एवं उर्वरक प्रबंधन** :- 10–12 टन गोबर की खाद प्रति हे. तथा 80:50:50 कि.ग्रा. नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश प्रति हे. दिया जाए। फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा भूमि की तैयारी करते समय दे देना चाहिए।

vi. **जैविक खेती की सम्भावनायें** :- खस का उत्पादन जैविक खेती के रूप में भी लिया जा सकता है। ऐसे स्थान जहॉ भूमि क्षरण की समस्या हो वहॉ इस फसल को भूक्षरण रोकने के उद्देश्य से भी लगाया जा सकता है।

vii. **खरपतवार प्रबंधन** :- प्रारंभिक अवस्था में यदि खरपतवार हो तो निंदाई करना आवश्यक हैं प्रत्येक कटाई के बाद निंदाई एवं हल्की गुडाई अवश्य करनी चाहिए।

viii. **सिंचाई एवं जल निकास** :- वर्षा ऋतु के अलावा शुष्क मौसम में फसल को सिंचाई देना लाभदायक है क्योंकि मृदा में पर्याप्त नमी होने पर जड़ों की लम्बाई बढ़ती है एवं उनका विकास शीघ्रता से होता है। पहली सिंचाई पौधे रोपण के तुरन्त बाद देना चाहिए। इसके बाद आवश्यकतानुसार 7–8 सिंचाई की आवश्यकता होती है। जड़ों की खुदाई से पूर्व एक हल्की सिंचाई करना आवश्यक है।

ix. **पौध संरक्षण** :- अतः इस फसल पर समान्यतः किसी प्रकार की बीमारी या कीट–व्याधि का प्रकोप नहीं होता है।

x. **फसल कटाई एवं भण्डारण प्रबंधन** :- खस की जड़ों की खुदाई रोपाई के 12–18 माह बाद करना ठीक रहता है। इसकी खुदाई दिसम्बर – जनवरी माह में करना उपयुक्त रहता हैं । खुदाई के समय मृदा में हल्की नमी होना आवश्यक हैं क्योंकि नमी रहने पर जड़ें आसानी से पूरी लम्बाई तक निकल आती हैं और मिट्टी भी आसानी से झाड़कर हटा दी जाती है। भारी एवं चिकनी मृदाओं में जहाँ पर मृदा जलस्तर ऊँचा हो जड़ों को खोदकर 2–3 दिन खेत में सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है ताकि मिट्टी आसानी से अलग हो सके। एक हे. क्षेत्र से लगभग 30–40 क्विंटल जड़ें पैदा होती हैं जिससे लगभग 15 से 16 किलो तेल निकाला जा सकता है।

xi. **आसवन** :- तेल का आसवन करना एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। आसवन प्रक्रिया पूर्ण होने में 15–16 घन्टे का समय लगता हैं। आसवन से पूर्व यदि जड़ों को हल्का सुखा लिया जाये तो तेल की गुणवत्ता अच्छी मिलती है एवं साथ ही साथ तेल की खुशबू भी अच्छी होती हैं। आसवन से पूर्व जड़ों को 3–5 सेमीं आकार के छोटे– छोटे टुकड़ों में काट कर पानी छिडक दिया जाता है।

xii. आर्थिक विश्लेषण :– खस के सुगंधित तेल का बाजार भाव लगभग 10 से 12 हजार रूपये प्रति किलो है। जिसके आधार प्रति हे. इस फसल के उत्पादन से लगभग 1.20 लाख का शुद्ध लाभ प्राप्त हो सकता है।

# पचौली की उन्नत खेती

| | |
|---|---|
| वानस्पतिक नाम एवं कुल : | पेागोस्टेमॉन कैबलिन |
| कुल : | लेमिएसी |

## 1. संक्षिप्त परिचय :-

यह एक छोटा झाड़ीनुमा पौंधा हैं, जिसकी ऊँचाई 2 से 3 फीट तक होती हैं। तने सीधे होते हैं। पत्तियां मोटी बड़ी, अण्डाकार, खुरदुरी, किनारे कटे हुए एवं आगे की ओर नुकीली हल्की पीली एवं भटरंगी हरे रंग की होती हैं। उपोष्ण एवं उष्ण कटिबंधीय जलवायु जहां 22–28 डिग्री से. तापमान व 70–80 प्रतिशत आद्रता हो, इसके लिये उपयुक्त है। विश्व में इसके तेल की मांग 2000 टन जबकि उत्पादन 1500 टन होता है। भारत में ही इसके लगभग 200 टन तेल की खपत है। वर्श 2023–24 में भारत द्वारा लगभग सात करोड़ रू. के पचौली तेल का निर्यात किया गया।

**औषधीय महत्व** :- वर्तमान में पचौली तेल का उपयोग बड़े पैमाने में इत्र, साबुन, श्रृंगार सामग्री, सुगंधित धूप, कृमिनाशक औषधियों के निर्माण, केन्डी, दूध से बनी मिठाई, बैक्ड पदार्थ में संघठक के रूप में किया जाता हैं।

**उपयोगी भाग** :- पत्तियॉ

**प्रमुख सक्रिय तत्व** :- पचलौल, पचौली एल्कोहल एल्फा एवं बीटा पचोलीन व अन्य

## 2. संक्षिप्त कृषि कार्यमाला :-

i. भूमि का चयन :– समुचित जल निकास वाली बलुई हल्की मिट्टी उपयुक्त होती हैं। इसे हल्की अम्लीय अभिक्रिया वाली भूमि में भी लगाया जा सकता है। सर्वप्रथम मिट्टी पलटने वाले हल के द्वारा गहरी जोताई करें तत्पश्चात डिस्कहैरो या कल्टीवेटर द्वारा जुताई कर मिट्टी को भुरभुरी बना लेवें, अन्त में पाटा चला कर खेत को समतल करने के बाद लगावें।

ii. **बीज का मात्रा एवं बोने की विधि** :- जुलाई में इसकी तीन गांठ वाली कलमों का रोपण किया जाता है। पचौली का प्रवर्धन वानस्पतिक विधि से इसकी कलमों से ही किया जाता है जो कि इसके पुराने पौधों की कोमल शाखाओं से बनाई जाती हैं। इसके कलमों के लिए पहले नर्सरी तैयार की जाती है । व्यावसायिक कृषिकरण दृष्टि से सीधे खेत में भी तैयार किया जा सकता है। कटिंग द्वारा शाकीय तने के अग्रभाग की 10–12 सेमी. लम्बी, 4–6 पत्तियाँ व 3–4 गाठों वाली कटिंग उपयुक्त होती हैं। मानसून के शुरूआती दौर में कटिंग तैयार की जाना चाहिए।

iii. **बीजोपचार** :- इस फसल के लिये कलमों को कार्बनडाजिम के एक प्रतिशत घोल में 5 से 10 मिनट तक उपचारित करने के पश्चात लगाया जाना चाहिये।

iv. **अनुशंसित किस्मे** :- सिम उत्कृष्टी (पचौली, एल्कोहल 43 प्रतिशत, सूखी पत्तियॉ 63 क्वि. प्रति हे. व तेल 110 किलो प्रति हे.), सिम–समर्थ , सिम– श्रेष्ठा, जोहोर,सिंगापुर व मलेशिया

v. **खाद एवं उर्वरक प्रबंधन** :- 150:50:50 किलो प्रति हे नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश देवें। नत्रजन को 3 से 4 भाग में बांट कर देना चाहियें। फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा अंतिम जुताई के समय खेत में मिला देना चाहिए।

vi. **जैविक खेती की सम्भावनायें** :- इसकी खेती के लिये जैविक खेती अधिक लाभदायक नहीं है क्योंकि इसकी पत्तियॉ ही प्रमुख व्यावसायिक भाग है जिसके उत्पादन के लिये नत्रजन की अधिक आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति अकार्बनिक उर्वरकों के माध्यम से ही की जा सकती है।

vii. **खरपतवार प्रबंधन** :- प्रारंभिक अवस्था में यदि खरपतवार हो तो निंदाई करना आवश्यक हैं प्रत्येक कटाई के बाद निंदाई एवं हल्की गुडाई अवयय करनी चाहिए।

viii. **सिंचाई एवं जल निकास** :- फसल के पूर्ण जीवन काल में पर्याप्त मात्रा में मृदा नमी का बना रहना एक महत्वपूर्ण कारक है, प्रचूर मात्रा में नमी स्तर बने रहने से पौधें की वृद्धि तीव्र गति से होती है एवं वर्ष भर अच्छी कटाइयाँ प्राप्त की जा सकती हैं। मार्च– जून तक लगभग 10–12 दिन के अन्तराल पर सिंचाई का प्रबंध करना चाहिए। जल भराव वाली स्थिति इस फसल के लिये नुकसानदायक होती है अतः विशेश रूप से वर्शा ऋतु में खेत में जल निकास का उचित प्रबंध करे।

ix. **पौध संरक्षण** :- इस फसल में पत्ती खाने वाले कीटों का प्रकोप देखा गया है जिसके लिये नीम तेल का प्रयोग किया जा सकता है।

x. **फसल कटाई एवं भण्डारण प्रबंधन** :- पहली कटाई पौध रोपण के 4 से 5 माह बाद की जा सकती है। तीन से चार माह बाद पश्चात् इसकी निचली पत्तियाँ हल्की पीली होने पश्चात् कटाई करनी चाहिए। फसलों की कटाई तेज हसिये की सहायता से प्रातः काल मे करना चाहिये। पौधे की

सभी कोमल पत्तियों व शाखायों जमीन से 30– 40 सेमी. ऊचाई से काटें। पचौली के आसवन से पूर्व इसे अच्छी प्रकार सुखाया जाता है। जिसके लिए क्रांक्रीट फर्श पर इसकी पत्तियों को पतली परत के रूप में शेड के नीचे बिछा दिया जाता हैं। प्रायः 10–15 दिन में फसल अच्छी प्रकार सूख जाती है। सुखाने की प्रक्रिया छाया में ही की जानी चाहिए तथा फसल को निरन्तर उलटते–पलटते रहना चाहिए जिससें फसल अच्छी प्रकार सूख जाए।

xi. **आसवन** :- पचौली का आसवन जल एवं वाष्प आसवन दोनों विधियों से किया जा सकता है। पचौली की आवसन प्रक्रिया पूरी होने में लगभग 6–8 घण्टें का समय लगता हैं। आसवन की समय सीमा का तेल की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है। यदि आसवन का समय कम रहता है तो कम विशिष्टता घनत्व वाला तेल प्राप्त होता हैं। वाष्प आसवन करते समय कम एवं अधिक वाष्प दाब टैंक में बारी – बारी से प्रवाहित करना चाहिए।

xii. **आर्थिक विश्लेषण** :- पचौली से प्राप्त होने सुगंधित तेल का बाजार भाव 4500 से 5500 के मध्य होता है जिससे अनुमानित रूप लगभग 1.5 लाख की शुद्ध आय अर्जित की सकती है।

# तुलसी की उन्नत खेती

| | |
|---|---|
| वानस्पतिक नाम एवं कुल : | ऑसिमम बेसिलिकम |
| कुल : | लेमिएसी |

## 1. संक्षिप्त परिचय :-

तुलसी एक सर्वपरिचित वनस्पति हैं। किसी भी स्थान पर उगने वाली इस वनस्पति का भारतीय धर्म–संस्कृति में उच्च, पवित्र और महिमापूर्ण स्थान है। तुलसी का पौधा औषधीय गुणों से परिपूर्ण होने के साथ–साथ सुगंधित तेल का भी महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। इसकी पत्तियॉ अण्डाकार और किनारे हल्की दॉतेदार होती है। इसमी छोटे सफेद या हल्के बैगनी रंग के फूल मंजरियों में खिलते है यह समान्यतः एक से तीन फीट तक उंचा होता है। इसका तना सीधा और मुलायम होता है जो बडने पर काष्ठीय हो जाता है इसकी पत्तियों में तेल पाया जाता है। श्यामा तुलसी में औषधीय गुण सर्वाधिक होते हैं।

**औषधीय महत्व** :- पित्त–कफनाशक, हृदयहितकर, चर्मरोग कृमि, मुंहासे–खुजली दाद, उल्टी, मधुमेह, वात विकार, रंग, बेहोशी, एलर्जी तथा अन्य रोगों के उपचार के लिये एक उपयोगी औषधि हैं।

**उपयोगी भाग** :- पत्ती एवं बीज

**प्रमुख सक्रिय तत्व** :- मिथाइल चेवीकॉल, लिनालूल, यूजिनाल सिट्राल, मिथाइल सिन्नेमेट

## 2. संक्षिप्त कृषि कार्यमाला :-

i. **भूमि का चयन** :- समुचित जल निकास वाली, भुरभुरी एवं समतल भूमि उचित होती है। बलुई दोमट, बलुई भूमि सर्वश्रेष्ठ होती है जिसका पी.एच मान 6 से 7 के मध्य हो। सर्वप्रथम मिट्टी पलटने वाले हल के द्वारा गहरी जुताई करें तत्पश्चात डिस्कहैरो या कल्टीवेटर द्वारा जुताई कर मिट्टी को भुरभुरी बना लेवें, अंत में पाटा चला कर खेत का समतल करने के बाद लगावें।

ii. **बीज का मात्रा एवं बोने की विधि** :- बीजों से नर्सरी तैयार कर जून–जुलाई में रोपण या असिंचित दशा में सीधे बोता किया जाता हैं। नर्सरी छायादार स्थान पर होनी चाहिए। बीज में आधा बालू रेत मिलाकर समान मात्रा में क्यारी की सतह पर बिखेर दें। तत्पश्चात् हाथ से लगभग एक सेंटीमीटर

की गहराई तक बीजों को मिट्टी में मिला दें। बीज बुवाई के समय नर्सरी की भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। नर्सरी में बीज उगाकर। प्रति हे. 500 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। नर्सरी रोपाई से 25–30 दिन पहले ही डालनी चाहिये। पर्याप्त बीज (प्रति हे. 2–2.5 कि.ग्रा) उपलब्ध होने पर सीधे बुवाई कर सकते है। बोवाई कतारों में 50–60 ग 30–40 से.मी. की जाना चाहिए।

iii. **बीजोपचार** :- बीज को बोवाई से पूर्व ट्राईकोडर्मा अथवा अन्य किसी फफूंदनाशी उपचारित करना चाहिए।

iv. **अनुशंसित किस्मे** :- लखनऊ लोकल, कायाकृर्ति माजा, पोशाक, वल्लभ मेघा इत्यादि।

v. **खाद एवं उर्वरक प्रबंधन** :- 5 से 10 टन सड़ी हुई गोबर खाद भूमि की तैयारी के पश्चात् डाले। 80:40:40 किलोग्राम नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश जिसमें नत्रजन को तीन भाग में बॉट ले एवं तीन बार तीन महिने डाले।

vi. **जैविक खेती की सम्भावनायें** :- इसकी खेती के लिये जैविक खेती अधिक लाभदायक नहीं है क्योंकि इसकी पत्तियॉ ही प्रमुख व्यावसायिक भाग है जिसके उत्पादन के लिये नत्रजन की अधिक आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति अकार्बनिक उर्वरकों के माध्यम से ही की जा सकती है।

vii. **खरपतवार प्रबंधन** :- नियमित रूप से खरपतवार हटाने के लिए निंदाई गुड़ाई करें। बुवाई के 20–30 दिनों बाद पहली निंदाई करें। फिर 15–20 दिनों के अन्तराल पर करें।

viii. **सिंचाई एवं जल निकास** :- पहली सिंचाई पौधारोपण/बुवाई के समय की जाती है। उसके बाद यदि वर्षा नहीं होती है, तो जून के महीने में 8–10 दिन के अन्तर पर पानी लगाएं। जुलाई में मानसून आने पर वातावरण में नमी हो जाती है, आमतौर पर वर्षा के मौसम में पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती है। फसल की कटाई से 10 दिन पहले सिंचाई बंद कर देना चाहिए।

ix. **पौध संरक्षण** :- सामान्यतः इस फसल पर किसी प्रकार के कीट प्रकोप नही होता है। तथापि पत्तियों पर भभूतिया रोग के लक्षण दिखाई देने पर गंधक युक्त फफूंदनाशी का प्रयोग किया जा सकता है।

x. **फसल कटाई एवं भण्डारण प्रबंधन** :- फसल की पहली कटाई रोपण के 3 माह बाद या फूल आने की अवस्था पर करनी चाहिये । पौधे की ऊपरी 25 से 30 से.मी. शाकीय भाग की ही कटाई करनी चाहिये। तुलसी की फसल को आवश्कतानुसार एक साथ या वर्ष में दो से तीन कटाई ली जा सकती है। यदि केवल एक ही कटाई लेनी हो तो इसे लगभग 60–70 दिन बाद जड़ सहित काटा जाता है। दोनों ही अवस्थाओं में कटाई का उचित समय 60–70 दिन बाद होता है, जब अधिकांश पौधों पर बीज बनना प्रारंभ हो जाए तथा बल्लरी का रंग पककर हरे से सुनहरे में बदलने लगे तब कटाई करें। हरी अवस्था में काटने से तेल उपज कम मिलता है। आसवन द्वारा तेल निकालने जब

पुश्पन होने लगे तब इसकी कटाई करने से अधिक उपज व तेल प्राप्त होता है।

यदि किन्हीं परिस्थितियों में ताजा पत्तियों को कुछ दिनों के लिए भंडारित करने की आवश्यकता पड़ती हैं, तो भंडारण के लिए ठंडे व न्यूनतम नमी वाले स्थान का चयन करना चाहिए। तेल की गन्दगी को छान कर एल्यूमिनिया के डब्बे में भर कर रखें। लगभग 10,000 किलो प्रति हे. हरी पत्तियॉ जिसमें 0.1 से 0.23 प्रतिशत तेल की मात्रा होती है 10 से 20 किलोग्राम प्रति हे. आश्वन द्वारा तेल प्राप्त होता है। सिंचित दशा में यह 20–25 टन प्रति हे. हरी शाक व 40 किलो तेल प्रति हे. तक प्राप्त होता हैं।

गपप आर्थिक विश्लेषण :– इसे शुद्ध लाभ 68000–72000 प्रति वर्ष प्राप्त होता है।

गपप आसवन :– इसका आसवन वाष्प एवं जलवाष्प आसवन दोनो विधि द्वारा किया जा सकता हैं। यदि फसल की कटाई के बाद आसवन करने में देरी है तो फसल को खुले एवं छाया में फैले रहने देना चाहिए अन्यथा पत्तियों में सड़न हो सकती हैं।

# सुगंधित तेलों के मूल्यवर्धित उत्पाद

सुगंधित पौधों के विभिन्न भाग जैसे पत्ती, बीज, जड़, फूल, पंचाग आदि से सुगंधित तेल (एसेंशियल ऑइल) प्राप्त किया जाता है। जल आसवन विधि तथा भाप आसवन विधि से यह सुगंधित तेल निकाला जाता है। प्राचीन समय से ही सुगंधित तेलों का उपयोग दवा, सौंदर्य प्रसाधन, इत्र में किया जाता रहा है। सुगंधित तेल का उपयोग अरोमाथैरेपी में भी किया जाता है। 'अरोमा' का अर्थ होता है 'खुशबु' । अरोमाथैरेपी एक ऐसी चिकित्सा पद्धति है, जिसमें बहुत सारे रोगों के इलाज में सुगंधित तेलों का प्रयोग किया जाता है। सुगंधित पौधों से प्राप्त प्राकृतिक तेल का औद्योगिक रूप से विशिष्ट महत्व है। विभिन्न सुगंधित पौधों से निकले तेलों से तरह–तरह के मूल्यवर्धत उत्पाद तैयार किये जाते हैं। इन सुगंधित तेलों का प्रयोग अनेक रोगों को दूर करने में किया जाता है, जैसे रोजमेरी व लैवेंडर की खुशबु से सिरदर्द की समस्या से जल्दी आराम मिलता है, नींद न आने की समस्या में लैवेंडर, कैमोमिल आदि खुशबुओं का प्रयोग किया जाता है। जैस्मिन और कैमोमिल की खुशबु से डिप्रैशन व अच्छे मूड में सकारात्मक प्रभाव होता है। गुलाब और जिरेनियम के तेल त्वचा के लिए उपयोगी है । इसके अलावा टी–ट्री ऑयल पिम्पल को ठीक करता है। इसी प्रकार सुगंधितें सभी तेलों के अपने अलग– अलग गुण और पोषक तत्व होते हैं और यह पोषक तत्व उन पौधों के आधार पर होते है, जिनसे आवश्यक तेलों को प्राप्त किया जाता है ।

## सुगंधित तेलों से संभावित उत्पाद

प्राकृतिक सुगंधित तेलों की बाजार में अच्छी मांग बनी रहती है। प्राकृतिक सुगंधित तेलों से निर्मीत किये जाने वाले संभावित उत्पादों का विवरण निम्नानुसार हैः–

### 1. सुगन्धित साबुन

सुगन्धित उच्च गुणवत्ता के साबुन त्वचा के लिए फायदेमंद होते है। इन्हें बनाने हेतु विभिन्न प्रकर के तेल, बटर, लाई, पानी का उपयोग किया जाता है। ऐसे साबुन को बनाते समय एलोवेरा जेल का प्रयोग भी किया जा सकता है साबुन ऐसे सोप बेस में हर्बल सामग्री जैसे नीम, एलोवेरा जेल, प्राकृतिक सुगन्धित तेल, रंग आदि मिलकर सुगन्धित साबुन तैयार किया जा सकता है। साबुनीकरण की प्रक्रिया में ये सभी संघटक सही तापमान पर सम्मिश्रित होते है और तरल साबुन के रूप में आ जाते है। इस प्रकार तैयार किये गए घोल में एवं ग्लिसरीन उचित मात्रा में मिलकर सोप बेस तैयार किया जाता है।

बाजार में अनेक प्रकार के तैयार सोप बेस भी मिलते हैं। सोप बेस तैयार करने में समय तथा कार्यकुशलता की आवश्यकता होती

है। बाजार में उपलब्ध सोप बेस का प्रयोग कर सुगन्धित साबुन तैयार किया जाना अधिक आसान है। सर्वप्रथम सोप बेस को तरल बनाने के लिए गर्म किया जाता हैं। फिर इसमें एलोवेरा जेल, ग्लिसरीन मांग अनुसार सुगंधित तेल (लेमनग्रास, मिन्ट, खस, तुलसी, रोशाघास इत्यादि) और रंग मिलाया जाता हैं। इसके बाद इस मिश्रण को सिलिकॉन रबर के सांचे में 2 से 3 घण्टे जमने के लिए रखा जाता हैं। इसके बाद इसकी पैकिंग की जाती हैं।

**सुगन्धित साबुन तैयार करने हेतु आवश्यक सामग्री** : सोप बेस तैयार करने के लिए विभिन्न प्रकार के तेल और ग्लिसरीन, पानी आदि की आवश्यकता होती है, जबकि तैयार सोप बेस से सुगन्धित साबुन तैयार करने के लिए सुगन्धित प्राकृतिक तेल जैसे लेमनग्रास एसेंशियल आयल, मिंट एसेंशियल आयल, तुलसी एसेंशियल आयल, खस एसेंशियल आयल , हर्बल पौधे (एलोवेरा), विभिन्न प्रकार के रंग, सांचे, बर्तन, पैकेजिंग, सीलिंग मशीन आदि की जरुरत होती है।

### 2. सुगंधित अगरबत्ती निर्माण

अगरबत्ती का उपयोग लगभग प्रत्येक भारतीय द्वारा घर, दुकान तथा पूजा–अर्चना के स्थान पर किया जाता है। इस छोटे से उत्पाद की बाजार में व्यापक रूप से खपत है। अगरबत्तियाँ विभिन्न सुगंधों में बनायीं जाती हैं। कुछ सुगंधित तेलों की मदद से मच्छर भगाने वाली अगरबत्ती भी बनायी जा सकती इस हेतु सुगंधित मिश्रण का प्रयोग भी संभव है। अगरबत्ती के निर्माण की प्रक्रिया कम पूंजी में घरेलु स्तर पर शुरू की जा सकती है। इसके निर्माण में घर के सदस्य हाथ बंटा सकते हैं। यह उद्योग ग्रामीण स्तर पर जीविकोपार्जन का साधन बन सकता है।

**सुगंधित अगरबत्ती बनाने हेतु आवश्यक सामग्री** : अगरबत्ती बनाने के लिए बांस की तीली, चारकोल पाउडर, जिगेट पाउडर, हर्बल पाउडर, डीईपी कैमिकल, सुगंधित तेल, पैकिंग सामग्री प्लास्टिक की थैलीयाँ कागज के डब्बे, आदि की जरूरत होती है। बिना कृत्रिम सुगंध की अगरबत्तियों का भी बाजार में अच्छा चलन है

**बनाने की विधि** : सुगंधित अगरबत्तियां बनाने के लिए प्राकृतिक खुशबू जैसे गूग्गल, लोबान, कपूर, शुद्ध चंदन पाउडर, सुगंधित तेल जैसे कपूर कचरी, खस, तुलसी, लेमनग्रास आदि तेलों आदि की आवश्यकता रहती है । इनमें सर्वप्रथम सफेद चंदन तथा लकड़ी के कोयले को अच्छी तरह पीस लेते हैं। जिगेट पाउडर को पानी में मिलाकर उसकी लोई बना ली जाती है। इसके उपरांत इसमें पिसा हुआ चंदन सफेद, राल तथा लकड़ी का कोयला (चार कोल) मिला दिया जाता है। इस प्रकार यह मसाला तैयार हो जाता है। इस मसाले को मशीन द्वारा या हाथ द्वारा बांस की तीलियों पर लगाया जाता है। मसाला सूख जाने के उपरांत अगरबत्ती को सुगंधित बनाने के लिए सुगंधित

मिश्रण में डुबोया जाता है। अगरबत्तियों की पैकिंग 10–10 तीलियों की संख्या में चौकोर कार्डबोर्ड के डिब्बों में की जाती है। डिब्बों में पैक करने से पूर्व इन पर पॉलीथिन या सैलोफीन कागज चिपकाया जाता है। मच्छर भगाने के लिए हर्बल अगरबत्ती भी बनायीं जाती हैं। जिसमे नीम, तुलसी तथा सिट्रोनेला, नीलगिरि, लेमनग्रास आदि के मिश्रित सुगंधित तेलों का प्रयोग किया जा सकता है।

### 3. सुगंधित मोमबत्ती निर्माण

एरोमेटिक मोमबत्तियाँ बनाना एक कला है और यह एक अच्छा व्यवसाय भी हो सकता है। वर्तमान में मोमबत्ती प्रकाश देने के अलावा समारोह में, त्योहारों में उपयोग में आती है। सुगन्धित तेलों से निर्मित मोमबत्तियाँ भी आजकल काफी पसंद की जा रही है। इन्हे समारोह में, उपहार देने के लिए, घर के कमरे महकाने के लिए उपयोग किये जाता है।

**सुगंधित मोमबत्ती बनाने हेतु आवश्यक सामग्री** : सुगन्धित मोमबत्तियाँ बनाने के लिए हमें वैक्स, सुगन्धित तेल, तेलों में घुलनेवाले रंग, धागा, कांच के छोटे डिजाइनर बर्तन एवं विभिन्न प्रकार के सांचो की आवश्यकता होती है।

**बनाने की विधि** : सुगंधित मोमबत्ती बनाने के लिए सबसे पहले उचित लंबाई के धागे को कांच के बर्तन में स्थापित करें। धागे को बर्तन में नीचे की ओर से चिपकायें। धागे को ऊपर से छोटी लकड़ी से बांध दें। डबल बायलर पद्धति से मोम पिघलाएँ और बीच – बीच में ग्लास की डंडी से हिलाते रहें। मोम में घुलनशील रंगो को आवश्यतानुसार उचित मात्रा में तेल के साथ घोल बनाकर गर्म मोम में मिलायें। जरुरत के अनुसार रंगबिरंगी मोमबत्तियाँ बनाने हेतु एक से अधिक रंगों का प्रयोग भी किया जा सकता है। मोमबत्ती को सुगन्धित बनने हेतु गर्म मोम में सुगन्धित तेल या इत्र की उचित मात्रा मिलाये और ग्लास की डंडी से पूर्ण रूप से मिलाने के लिए चलाते रहें। अंत में यह गर्म मोम ग्लास के बर्तन में डाले या जरुरत के अनुसार सिलिकॉन रबर मोल्ड के विभिन्न आकारों के सांचे में ढालकर भिन्न–भिन्न आकार की मोमबत्ती तैयार की जा सकती हैं। कुछ घंटों बाद मोम जब जम जाये तो सिलिकॉन मोल्ड से अलग निकल दें। अब सुगन्धित मोमबत्ती उपयोग के लिए तैयार है। इन मोमबत्तियों को घर महकाने, समारोह में उपयोग करने के लिए और उपहार में देने के लिए उपयोग किया जा सकता है।

# सुगंधित पौधों से सुगंधित तेल निकालने की वाष्प आसवन विधि एवं भंडारण

प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर छत्तीसगढ़ की भूमि जलवायु विभिन्न फसलों के साथ औषधीय एवं सुगंधित फसलों के लिए उपयुक्त है। राज्य के उत्तर में पर्वतों एवं दक्षिण के पर्वत एवं पठार इन प्राकृतिक औषधीय एवं सुगंधित पौधों के लिए प्रसिद्ध है। छत्तीसगढ़ को धान का कटोरा कहा जाता है लेकिन पिछले कुछ वर्षों से कृषकों को धान से फायदा उतना नहीं हो पा रहा है जिस अनुपात में होना चाहिए। अतः छत्तीसगढ़ के कृषकों को विविधीकरण की सलाह दी जा रही है। जिसमें धान के अलावा उन फसलों को लेना उचित होगा, जिससे किसान को उसके उत्पाद का उचित मूल्य मिले एवं प्रति इकाई क्षेत्र से लाभ अधिक मिलें। जिससे छत्तीसगढ़ के कृषकों की आर्थिक एवं सामाजिक स्तर क्षमता बढ़ें।

छत्तीसगढ़ के कृषक अब औषधियों एवं सुगंधित पौधों के उत्पादन में रूचि ले रहे हैं। लेकिन कृषकों को अभी इन पौधों के बारे में तकनीकी जानकारी नही है, विकसित पौधे की उपलब्धता नहीं है, उत्पाद के गुणों की विवेचना ठीक से नहीं हो पा रही है एवं उत्पाद का कटाई के बाद किस प्रकार प्रसंस्करण होगा इसकी भी जानकारी नहीं है। अतः कृषकों को इन औषधियों एवं सुगंधित पौधों से लाभ तभी मिल सकता है जब उनकों इन उपरोक्त बातों का वैज्ञानिक तरीका मालूम हो तभी छत्तीसगढ़ हर्बल राज्य का सपना पूरा होगा।

## सुगंधित पौधों का प्रसंस्करण प्रोद्योगिकी :

सुगंधित पौधे जिनके आंसवन से वाष्पशील सुगंधित तेल प्राप्त होता है। किसान जब व्यवसायिक दृष्टि से लाभ प्राप्त करने वाले सुगंधित पौधे जैसे लेमनग्रास (नीबूघास), रोशाघॉस, सिट्रोनेला घॉस, पचौली, खस एवं मेन्था की खेती करता है। तब उसे खेत में एक क्षेत्र आसवन या वाष्प आसवन की आवश्यकता होती है। इन फसलों का आसवन करने से सुगंधित वाष्पशील तेल प्राप्त होता है जिसकी बाजार में अच्छी मांग हैं।

## वाष्प आसवन संयंत्र की स्थापना :

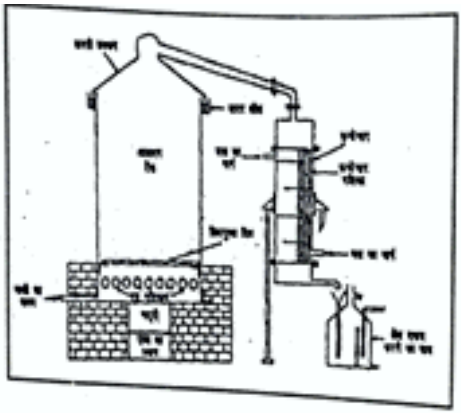

सुगंधित पौधों से प्राप्त वाष्पशील तेल जो सौंदर्य प्रसाधनों, साबुन, पान, तंबाखू, भोजन आदि को सुगंधित करने एवं औषधियों के रूप में प्रयुक्त होते है इससे इनका महत्व पूरे विश्व में है। सुगंधित तेलों का उपयोग सौंदर्य प्रसाधन एवं औषधीय उद्योग में बढ़ने से इनकी मांग पूरे विश्व में बढ़ती जा रही है। छत्तीसगढ़ में मुख्य रूप से सुगंधित पौधे लेमनघास, रोशा घास, सिट्रोनेला, मेन्था, पचौली की खेती, मुख्य फसल के रूप में कि जा सकती है जिनका की सुगंधित तेल निकाला जा सकता है। कृषकों को वाष्प

आसवन संयंत्र की स्थापना हेतु उचित जानकारी होना चाहिए ताकि वे सुगंधित पौधों की फसल के उत्पाद से अच्छी गुणवत्ता का अधिक मात्रा में सुगंधित तेल प्राप्त कर सके जिसमें उन्हें ज्यादा से ज्यादा आर्थिक लाभ हो सके। इस संबंध में विश्व विद्यालय में आसवन यंत्र स्थापित किया जा चुका है एवं जानकारी भी उपलब्ध है।

अधिकांश तेलों का उत्पादन आसवन विधि द्वारा ही किया जाता है। यह एक सबसे आसान एवं आर्थिक दृष्टि से लाभदायक विधि है। सामान्यतः इस विधि द्वारा तेलों के उत्पादन के चार साधन प्रचलित है।

1. जल आसवन (हाइड्रो डिस्टिलेशन)
2. क्षेत्र आसवन (वाष्प एवं जल डिस्टिलेशन)
3. वाष्प आसवन
4. हाइड्रोडिफ्यूजन

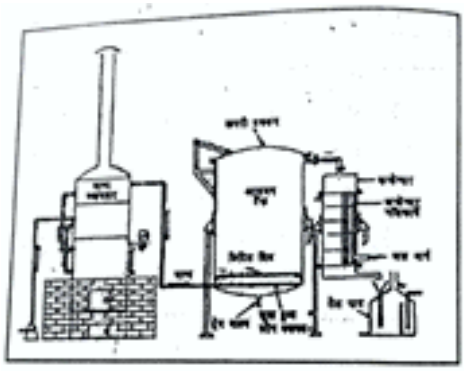

**जल आसनव** : इस विधि में सगंध पौध सामग्री को पानी के साथ उबालते हैं तथा वाष्प को द्रवित (केडेंस) कर लिया जाता है। बाद में तेल को द्रवित पानी से अलग कर लिया जाता है। जल आसवन पद्धति में पौध सामाग्री सदैव पानी के सम्पर्क में रहती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि डेग जिसमें पानी उबाला जाता है उसमें सदैव पानी इतनी मात्रा में रहना चाहिये कि आसवन खत्म होने तक पानी कम न पड़ने पाये अन्यथा पौध सामग्री के जलने से तेल की सुगंध में जलने की महक आ सकती है और तेल की गुणवत्ता खराब हो जायेगी।

**क्षेत्र आसवन** : यह जल आसवन की एक विकसित इकाई है। इसमें मुख्य चार भाग होते हैं–टैंक, कन्डेंसर, रिसीवर एवं भट्टी। टैंक प्रायः माइल्ड स्टील या स्टेनलेस स्टील के बने होते हैं। टैंक के निचले हिस्से में पानी रहता है जिसके उपर जाली रखी जाती है तथा जाली के ऊपर पौध सामग्री को भरा जाता है। टंकी को एक बैगर पाइप द्वारा कन्डेंसर से जोड़ दिया जाता है। भट्टी को गर्म करने के लिये इसमें खरपतवार तथा आसवन के पश्चात् बची हुई पौध सामग्री आदि जलायी जाती है। इससे ईंधन की काफी बचत होती है तथा उत्पादन का खर्चा भी कम हो जाता है।

**वाष्प आसवन :**

यह एक विकसित विधि है। इस विधि में भी आसवन करने के लिये उपरोक्त चार भाग लगते

हैं। क्षेत्र आसवन विधि से केवल अन्तर इतना है कि इसमें बायलर द्वारा भाप तैयार करके पाइप द्वारा भाप टंकी में पहुंचाई जाती है एवं इसकी दो टंकियां भी हो सकती हैं। पहले प्रथम भाप टंकी जिसमें घॉस भरी है उसका उपयोग किया जाता है। टंकी में गोल छिद्रों वाली जाली लगी होती है, जिसके ऊपर पौधों को अच्छा दबाकर भर दिया जाता है। भाप का पाइप जिसमें छोटे–छोटे छिद्र होते है, जाली के नीचे लगा होता है। इस विधि को सुगम बनाने हेतु टंकी के अंदर जालीनुमा सीके (केज) रखे जाते हैं। इन सींकों को पहले से घॉस द्वारा भर लिया जाता है। क्रेन व चेन पुली द्वारा इन सींकों को गर्म अवस्था में बाहर निकाल लिया जाता है। इन सींकों को छिद्रकार पाइप होते हैं, जिससे वाष्प अंदर तक पहुॅच जाती है जिससे तेल अच्छी मात्रा में प्राप्त होता है। भाप का दबाव अधिक होने से भाप छिद्रों से निकलकर टंकी के पौधों में प्रवेश करती है। भाप के साथ तेल कन्डेंसर में जाता है वहां भाप व तेल ठंडे होकर रिसीवर में आते हैं। जहां तेल व पानी अलग हो जाते हैं। तेल को कॉच या स्टील के बर्तनों में इकट्ठा करके भण्डार किया जाता है। इस संयंत्र की विशेषता यह है कि कन्डेंसर से बाहर आने वाले गर्म पानी को कूलिंग टावर में भेजकर पुनः ठंडा कर लिया जाता है जिससे पानी का पुनः उपयोग हो जाता है। दूसरी विशेषता यह है की टंकी के ढक्कन के ऊपर गूजनेक होती है जिसमें तेल व वाष्प को ठंडा किया जाता है। तीसरी विशेषता यह है कि ठंडा करने के लिए इस कंडेंसर से निकला गर्म पानी आवश्यकता अनुसार स्ट्रीम जनरेटर (बायलर) मे वाष्प बनाने के लिए लकड़ी या सूखी जली हुई घॉस का उपयोग करते हैं।

### आसवन की विशेषताएॅ :

इस विधि की विशेषता यह है कि इस विधि से निकलने वाले तेल उच्च गुणवत्ता वाले होते है। क्योंकि आसवित की जाने वाली फसल को सीधा गर्म नही किया जाता है जिससे तेल में जलने की दुर्गंध नहीं आती। विभिन्न तेल विभिन्न ताप व दाब पर निकलते है इस विधि में ताप व दाब को नियंत्रित किया जा सकता है।

### भंडारण :

तेल को भंडारण के पहले इसे नमी रहित करते हैं। इसके लिए एनहाईड्रस सोडियम सल्फेट डालकर पानी या नमी को दूर कर लिया जाता है। सुगंधित तेलों का भंडारण भली भांति करना चाहिए जिससे गुणवत्ता खराब न हो। तेल का लम्बे समय तक भंडारण रखने पर कुछ रसायनिक क्रियायें जैसे पालीमेराइजेशन, आक्सीडेशन या हाइड्रोलिसिस की वजह से तेल की गुणवत्ता प्रभावित होती है। सामान्यतः तेल/स्टेनलेश स्टील/ब्राउन कॉच शीशी तथा एल्यूमीनियम के बर्तनों में भण्डारण किया जाता है। जिस बर्तन में तेल रखा जाए उसमें हवा या आक्सीजन के लिए खाली जगह नहीं होना चाहिए यानी कि बर्तन मुॅह तक पूरा भरा होनाा चाहिए। धूप व रोशनी से भी बचाना चाहिए। इस प्रकार तेल का आसवन व भंडारण किया जाता है।

# औषधीय सगंध एवं अकाष्ठीय वनोपज उत्कृष्ठता केन्द्र

## इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर-492012 (छ.ग.)